है, जबकि वास्तविकता यह है कि व्यक्ति के अध्ययन के बिना समूहों का वैज्ञानिक अध्ययन सम्भव नहीं है। स्वयं दुर्खीम ने भी इस वास्तविकता को स्वीकार करते हुए कहा है कि "मैं नहीं समझ पा रहा हूँ कि व्यक्ति को समाज से पृथक् करके उसे किस प्रकार समझा जा सकता है।" यह भी आलोचना की जाती है कि दुर्खीम ने **बाध्यता** को सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषता के रूप में स्पष्ट किया है लेकिन यह विशेषता इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण नहीं है कि एक समाज के सदस्यों में प्रत्येक सामाजिक तथ्य की बाध्यता के बारे में कोई आम सहमति नहीं होती। इस आधार पर सामाजिक तथ्य की अवधारणा संकीर्ण हो जाती है। सामाजिक तथ्य की अवधारणा से सम्बन्धित एक अन्य दोष यह है कि दुर्खीम **व्याधिकीय सामाजिक तथ्यों की प्रकृति** को पूर्णतया स्पष्ट नहीं कर सके। दुर्खीम ने अपराध तथा आत्महत्या को सामान्य सामाजिक तथ्य कहकर अपनी विवेचना को स्वयं भ्रमपूर्ण बना दिया।

सामाजिक एकता का सिद्धान्त
(THEORY OF SOCIAL SOLIDARITY)

दुर्खीम ने अपनी सबसे पहले प्रकाशित होने वाली पुस्तक **'समाज में श्रम विभाजन'** (The Division of Labour in Society) में यान्त्रिक तथा सावयवी एकता की अवधारणा को विस्तार से स्पष्ट किया। उनका मानना था कि यान्त्रिक और सावयवी एकता की दशाएँ सामाजिक संगठन के दो भिन्न स्वरूपों को स्पष्ट करती हैं। दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता समाज की एक नैतिक आवश्यकता है तथा जब किसी समाज अथवा समुदाय की आवश्यकताएँ बदलने लगती हैं तो सामाजिक एकता की प्रकृति में भी स्पष्ट परिवर्तन दिखायी देने लगता है। उन्होंने श्रम-विभाजन को एक ऐसे तथ्य के रूप में स्वीकार किया जो एक विशेष प्रकार की सामाजिक एकता को जन्म देता है। इसका अर्थ है कि श्रम-विभाजन के पहले और बाद में जिस सामाजिक एकता के दर्शन होते हैं, उसकी प्रकृति में काफी भिन्नता देखने को मिलती है। बाहरी तौर पर श्रम-विभाजन एक ऐसी दशा है जिसमें विभिन्न लोग भिन्न-भिन्न कार्यों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। कार्यों के विभाजन के कारण श्रम-विभाजन को अक्सर सामाजिक एकता के विरुद्ध समझ लिया जाता है। वास्तविकता यह है कि श्रम-विभाजन का मुख्य प्रकार्य एक-दूसरे से भिन्न कार्यों को करने वाले व्यक्तियों के जीवन में एकता उत्पन्न करना है क्योंकि एक-दूसरे की सहायता के बिना कोई भी व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता। सामान्य जीवन में भी हम केवल उन्हीं व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं रखते जो हमारे समान होते हैं बल्कि उन व्यक्तियों से भी हमारे घनिष्ट सम्बन्ध हो सकते हैं जिनके विचार, मनोवृत्तियाँ और कार्य हमसे भिन्न हैं। इस दृष्टिकोण से दुर्खीम ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के प्रथम भाग में सामाजिक एकता की प्रकृति तथा दूसरे भाग में श्रम-विभाजन के विभिन्न पक्षों की विवेचना करके श्रम-विभाजन एवं सामाजिक एकता के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट किया। अत: आवश्यक है कि दुर्खीम के द्वारा प्रस्तुत सामाजिक एकता के सिद्धान्त को समझने के लिए सामाजिक एकता की अवधारणा के साथ यान्त्रिक एकता एवं सावयवी एकता की प्रकृति को स्पष्ट किया जाये।

सामाजिक एकता की अवधारणा
(CONCEPT OF SOCIAL SOLIDARITY)

सभी विद्वान किसी-न-किसी रूप में सामाजिक एकता को सामाजिक जीवन की एक अनिवार्य विशेषता के रूप में स्वीकार करते हैं लेकिन दुर्खीम ने एक व्यवस्थित और तार्किक आधार पर सामाजिक एकता को एक ऐसे आधार के रूप में स्वीकार किया जिसकी प्रकृति के अनुसार ही विभिन्न समाजों की प्रकृति को समझा जा सकता है। दुर्खीम का विचार है कि समाज का विकास व्यक्तियों पर आधारित नहीं होता बल्कि व्यक्ति उस सामाजिक एकता के अधीन होते हैं जो समाज को संचालित और नियन्त्रित करती है। इसका तात्पर्य है कि समाज का वास्तविक अस्तित्व उस सामूहिक चेतना में होता है जिसके आधार पर समाज में एक विशेष प्रकार की एकता विकसित होती है। एकता समाज की एक नैतिक आवश्यकता है। जैसे-जैसे सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं में परिवर्तन होता है, सामाजिक एकता की प्रकृति में भी परिवर्तन होने लगता है। इस प्रकार सामाजिक एकता एक परिवर्तनशील दशा है। विभिन्न समाजों में होने वाले परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए दुर्खीम ने बताया कि **सामाजिक एकता में होने वाला परिवर्तन यान्त्रिक एकता** (mechanical solidarity) **से सावयवी एकता** (organic solidarity) **की ओर होता है।** यह सामाजिक एकता लोगों की सामूहिक चेतना से सम्बन्धित होती है। सामूहिक चेतना के अर्थ को स्पष्ट करते

Scanned with CamScanner

हुए उन्होंने लिखा कि सामूहिक चेतना एक ऐसा तथ्य है जो किसी समाज में लोगों की सांस्कृतिक, नैतिक और बौद्धिक समानताओं से उत्पन्न होती है। यह सच है कि सामूहिक चेतना का माध्यम व्यक्ति है लेकिन सामूहिक चेतना की प्रकृति व्यक्तिगत चेतना से भिन्न होती है। आदिम समाजों से लेकर आज तक कोई भी समाज ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें सामाजिक एकता का एक विशेष रूप न पाया जाता रहा हो। इसका कारण यह है कि सामाजिक एकता के बिना न तो लोगों के बीच व्यवस्थित सम्बन्धों का विकास हो सकता है और न ही उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक एकता एक ऐसा तथ्य है जिसका सामूहिक चेतना से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

दुर्खीम ने आदिम समाजों का उदाहरण देते हुए बताया कि इन समाजों में व्यक्तियों में बहुत अधिक समानताएँ होने के कारण उनमें सामूहिक चेतना बहुत विकसित रूप में देखने को मिलती है। इसका तात्पर्य है कि समाज में विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के बीच समानताएँ जितनी बढ़ती हैं, सामूहिक चेतना का रूप उतना ही स्पष्ट और शक्तिशाली होता जाता है। आदिम समाजों में समुदाय की एकता सामुदायिकता की भावना पर ही आधारित होती है। इस प्रकार साधारण शब्दों में, सामुदायिकता की भावना को ही सामूहिक चेतना का दूसरा रूप कहा जा सकता है। दुर्खीम ने स्वीकार किया कि सामाजिक एकता को बनाये रखने के लिए समाज में नियन्त्रण की जिस व्यवस्था को लागू किया जाता है, उसे भी सामूहिक चेतना से पृथक् करके नहीं समझा जा सकता।

सामाजिक एकता की प्रकृति में होने वाले परिवर्तन को भी दुर्खीम ने सामूहिक चेतना की प्रकृति में होने वाले परिवर्तन के आधार पर स्पष्ट किया। उन्होंने उदाहरण दिया कि जब किसी समुदाय में सामूहिक चेतना बहुत शक्तिशाली होती है तो वहाँ अपनी एकता को लोग एक नैतिक तथ्य के रूप में स्वीकार करने लगते हैं। इसी कारण ऐसे समाजों में दमनकारी कानून (repressive laws) लागू किये जाते हैं। यह वे कानून हैं जिनके द्वारा व्यक्तिगत की जगह सामूहिक हितों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। जो लोग सार्वजनिक हितों को आघात पहुँचाते हैं, उन्हें शारीरिक यातना अथवा हत्या के रूप में कठोर दण्ड दिया जाता है। ऐसे कानूनों का आधार समूह की नैतिकता होती है, चाहे वह क्रूर हो अथवा कष्टकारी। यदि किसी समाज में लोगों के बीच एक ऐसी एकता विकसित होने लगती है जिसमें सामूहिक चेतना तुलनात्मक रूप से कम पायी जाती हो तो वहाँ प्रतिकारी कानून अथवा क्षतिपूर्ति करने वाले कानूनों (restitutive laws) के द्वारा लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों में सन्तुलन बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। यह कानून सुपरिभाषित होते हैं तथा प्रशासन और न्यायालयों के द्वारा इन्हें प्रभावपूर्ण बनाया जाता है। दुर्खीम के अनुसार आदिम और सरल समाजों में जब श्रम-विभाजन का बहुत सरल रूप विद्यमान था, तब उनकी सामूहिक चेतना बहुत विकसित थी। इसी कारण इन समाजों में दमनकारी कानूनों पर आधारित सामाजिक एकता की प्रधानता थी। इसके बाद जैसे-जैसे श्रम-विभाजन का रूप जटिल और व्यापक होता गया, सामूहिक चेतना कमजोर पड़ जाने के कारण प्रतिकारी कानूनों पर आधारित सामाजिक एकता में वृद्धि होने लगी। इस प्रकार सामाजिक एकता को श्रम-विभाजन, सामूहिक चेतना की प्रकृति तथा नियन्त्रण की व्यवस्था से पृथक् करके नहीं समझा जा सकता।

यान्त्रिक एकता
(MECHANICAL SOLIDARITY)

दुर्खीम के अनुसार सामाजिक एकता का पहला मुख्य स्वरूप यान्त्रिक एकता है। यह वह एकता है जो आदिम, सरल तथा परम्परागत समाजों में पायी जाती है। यान्त्रिक एकता को दुर्खीम ने **'समानता की एकता'** कहा है। इसका तात्पर्य है कि जिन समाजों में लोगों के विचारों, विश्वासों, जीवन-शैली, नैतिकता तथा प्रस्थिति और भूमिका में काफी कुछ समानता होती है, वहाँ सभी लोग एक ऐसी सामूहिक चेतना को बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं जिस पर धार्मिक नियमों, परम्पराओं और जनमत का प्रभाव होता है। ऐसी सामूहिक चेतना के द्वारा जिस एकता का विकास होता है, प्रत्येक व्यक्ति को उसी के अनुसार विचार करना और कार्य करना आवश्यक होता है। दुर्खीम ने इसे 'यान्त्रिक एकता' इस कारण कहा कि **इसके अन्तर्गत व्यक्ति एक मशीन की तरह बिना अपनी इच्छा पर ध्यान दिये कार्य करता रहता है।** इस प्रकार जो समाज जितना अधिक समरूप होता है, उसमें यान्त्रिक एकता उतनी ही अधिक पायी जाती है।

Scanned with CamScanner

आदिम समाजों में यान्त्रिक एकता की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा कि ये समाज आकार में बहुत छोटे थे। इन समाजों में सदस्यों की आवश्यकताएँ बहुत कम थीं। सभी सदस्यों के कार्यों और विचारों में समरूपता पायी जाती थी। समाज में श्रम-विभाजन भी केवल आयु और लिंग पर आधारित था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दूसरे व्यक्तियों पर निर्भर रहता था। धार्मिक विश्वास, परम्पराएँ और जनमत लोगों के व्यवहारों को नियन्त्रित करने का सबसे प्रभावशाली साधन थे। यह एक ऐसी एकता थी जिसमें दमनकारी कानूनों और कठोर दण्ड के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को सामूहिक जीवन के विरुद्ध कोई भी कार्य करने से रोक दिया जाता था। अपराध का तात्पर्य उन कार्यों से समझा जाता था जो समूह की नैतिकता के विरुद्ध हों। जब व्यक्ति कोई अपराध करता था तो समूह के सभी लोग दण्ड के रूप में उससे प्रतिशोध लेने की बात सोचते थे। यह दशा समूह के सभी सदस्यों के बीच मानसिक एकता में वृद्धि करने लगती है। स्पष्ट है कि आदिम समाजों में सामूहिक चेतना का एक उच्च स्तर देखने को मिलता था। इसी सामूहिक चेतना से जिस सामाजिक एकता का विकास हुआ, उसी को दुर्खीम के अनुसार यान्त्रिक एकता कहा जाता है। यान्त्रिक एकता की प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) **समाज में समरूपता** (Homogeneity in Society)—यान्त्रिक एकता की पहली विशेषता यह है कि इसका सबसे स्पष्ट रूप केवल उन्हीं समाजों में देखने को मिलता है जो अपनी प्रकृति से समरूप होते हैं। समरूप समाज वे हैं जिनमें व्यक्तियों के विचारों, विश्वासों, आवश्यकताओं, नैतिकता और जीवन-शैली में काफी समानता होती है। इन समाजों में सभी व्यक्ति समान प्रकार के सामाजिक मूल्यों में हिस्सा लेते हैं तथा उनके संवेगों में भी बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है।

(2) **सामाजिक संस्तरण का अभाव** (Lack of Social Hierarchy)—दुर्खीम के अनुसार यान्त्रिक एकता वाले समाजों को एकीकृत अथवा अखण्डित समाज (non-segmental society) कहा जा सकता है। इसका तात्पर्य है कि ये वें समाज हैं जिनमें सदस्यों को विभिन्न खण्डों में विभाजित करने वाली कोई निश्चित व्यवस्था नहीं होती। सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक आधार पर सभी व्यक्तियों की प्रस्थिति और भूमिका लगभग समान होती है। व्यक्तियों के बीच ऊँच-नीच का कोई स्पष्ट संस्तरण अथवा वर्ग-विभाजन नहीं पाया जाता है। जब सम्पूर्ण समाज एकीकृत इकाई के रूप में कार्य करता है तो किसी भी व्यक्ति को अपने समूह के नियमों से भिन्न व्यवहार करने की अनुमति नहीं मिलती। यही दशाएँ यान्त्रिक एकता में वृद्धि करती हैं।

(3) **सामूहिक चेतना की प्रधानता** (Dominance of Collective Conscience)—दुर्खीम के अनुसार यान्त्रिक एकता तथा सामूहिक चेतना के बीच एक घनिष्ठ और पारस्परिक सम्बन्ध है। जिन समाजों में यान्त्रिक एकता पायी जाती है, उनमें सामूहिक चेतना बहुत शक्तिशाली होती है। सामूहिक चेतना के रूप में व्यवहार के जिन तरीकों, नियमों तथा विश्वासों को मान्यता दी जाती है, कोई भी व्यक्ति उनके विरुद्ध कार्य या व्यवहार नहीं कर सकता। यहीं पर दुर्खीम ने सामूहिक चेतना और व्यक्तिगत चेतना के अन्तर को स्पष्ट करते हुए यह बताया कि यान्त्रिक एकता की दशा में व्यक्ति की इच्छा पर आधारित चेतना का कोई महत्व नहीं होता। **दुर्खीम** के शब्दों में, "आदिम समाजों में सामूहिक चेतना इतने स्पष्ट और प्रबल रूप में होती है कि यह अपने सदस्यों के बीच विचारों की भिन्नता और विवादों को स्वयं ही समाप्त कर देती है।" इससे स्पष्ट होता है कि यान्त्रिक एकता से सामूहिक चेतना शक्तिशाली बनती है, जबकि सामूहिक चेतना यान्त्रिक एकता को प्रभावपूर्ण बनाती है।

(4) **जनमत की शक्ति** (Strength of Public Opinion)—यान्त्रिक एकता वाले समाजों में प्रत्येक व्यक्ति को जनमत के अनुसार कार्य करना आवश्यक होता है। ऐसे जनमत की प्रकृति औपचारिक नहीं होती बल्कि अनौपचारिक रूप से समूह द्वारा जो निर्णय लिये जाते हैं, वही आदिम समाजों में जनमत की आधारशिला होते हैं। यह जनमत चाहे सहयोग और प्रेम पर आधारित हो अथवा घृणा और हिंसा पर, उसी के अनुसार व्यवहार करना व्यक्ति का नैतिक दायित्व होता है। इस नैतिकता का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति को सामाजिक एकता के विरुद्ध मानकर समूह के सभी लोग उससे प्रतिशोध लेने का प्रयत्न करते हैं।

Scanned with CamScanner

(5) **व्यक्तिवादिता में कमी** (Lack of Individualism)—यान्त्रिक एकता एक ऐसी दशा को स्पष्ट करती है जिसमें सामूहिकता तथा व्यक्तिवादिता के बीच विरोधी सम्बन्ध होता है। इसका तात्पर्य है कि किसी समाज में जैसे-जैसे यान्त्रिक एकता बढ़ती जाती है, उस समाज में व्यक्तिवाद का प्रभाव कम होने लगता है। व्यक्तिवाद का आधार व्यक्तिगत इच्छा और व्यक्तिगत हितों को सन्तुष्ट करना है। इसके विपरीत, जब यान्त्रिक एकता का प्रभाव बढ़ता है तो वैयक्तिक इच्छाएँ सामूहिक चेतना अथवा समूह की इच्छाओं में समाहित हो जाती हैं।

(6) **अपराध की सामाजिक प्रकृति** (Social Character of Crime)—दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि यान्त्रिक एकता एक ऐसी दशा है जिसमें अपराध को समूह की भावनाओं पर आघात करने वाला कार्य माना जाता है। इसका तात्पर्य है कि यदि कोई व्यक्ति समूह के नैतिक नियमों, आदेशों या विश्वासों के विरुद्ध कार्य करता है तो सभी सदस्यों द्वारा उसे समूह के विरुद्ध मानकर उससे प्रतिशोध लेने का प्रयत्न किया जाता है। समूह में अपराध न हों, इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति दूसरे प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहारों पर निगाह रखता है। फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति अपराध की दशा में दण्ड से बच नहीं पाता। यह दशा भी यान्त्रिक एकता को प्रभावपूर्ण बनाती है।

(7) **दमनकारी कानून** (Repressive Laws)—दुर्खीम ने दमनकारी कानूनों और यान्त्रिक एकता के पारस्परिक सम्बन्ध को विस्तार से स्पष्ट किया। दमनकारी कानूनों का उद्देश्य अपराधी का सुधार करना या उसे प्रायश्चित करने का अवसर प्रदान करना नहीं होता बल्कि कठोर दण्ड देकर उससे इस तरह प्रतिशोध लेना होता है जिससे समूह के दूसरे लोगों को भावनात्मक रूप से सन्तुष्ट किया जा सके। इन कानूनों का कार्य प्रत्येक दशा में समाज की नैतिकता को बनाये रखना होता है। दमनकारी कानूनों में समूह की इच्छा या स्वीकृति का समावेश होता है। इस कारण जो व्यक्ति सामूहिक इच्छा या सामाजिक एकता के उल्लंघन के रूप में अपराध करता है, उसका कठोरता के साथ दमन कर दिया जाता है। इसका उद्देश्य अपराध की इच्छा को कठोरता से दबाना तथा अपराधी के प्रति समूह के विरोध को सन्तुष्ट करना होता है।

इन सभी विशेषताओं के द्वारा दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि यान्त्रिक एकता मुख्यत: आदिम और सरल समाजों की एक प्रमुख विशेषता रही है। आज भी जिन समुदायों का जीवन सरल और परम्परागत है, उनमें यान्त्रिक एकता से सम्बन्धित इन सभी विशेषताओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

Scanned with CamScanner